डा॰ अनिरुद्ध प्रसाद
हिन्दी विभाग
महाराजा कालेज

कबीर

प्रश्न : कबीर के काव्य में प्रेम और विरह की मार्मिक है। इस उक्ति की समीक्षा कीजिए।

उत्तर : कबीर मूल रूप से पहले भक्त हैं, बाद में कवि। भक्ति उनके तन-मन में बसा था। कुछ लोग भक्ति और ज्ञान को अलग समझते हैं। किंतु ध्यान देने वाली बात यह है कि अद्वैतवाद के अनुसार आत्मा और परमात्मा दोनों एक हैं। इसमें कोई विवाद नजर नहीं आता क्योंकि तत्वतः दोनों एक ही हैं। भक्ति में भी कबीर ने सबसे ज्यादा प्रेम परक भक्ति पर ही जोर दिया। कबीरदास जी कहते हैं —

राम मोरे भर्ता
मैं राम की बहुरिया।

यह कोई साधारण बात नहीं है। कबीर खुद को राम के चरणों में समर्पित कर देते हैं। कबीर जानते हैं कि पत्नी और पति के प्रेम से ज्यादा प्रगाढ़ रिश्ता और कोई नहीं हो सकता। इसलिए वे अपनी प्रेम-भक्ति को पति-पत्नी के रिश्ते तक ले जाते हैं।

कबीर के निर्गुण ज्ञानमार्ग में, विशेष तथ से भारतीय अद्वैतवाद में ब्रह्म ही पूर्ण है। शेष सब अधूरा है। उस पूर्ण ब्रह्म से परिचय करके, ही अधूरापन दूर किया जा सकता है, अहंकार रूप मिट जाते हैं। आत्मा निर्मल हो जाती है तथा ब्रह्म सृष्टि में सदा दिखने लगते हैं। आत्म साक्षात्कार परमात्म के साक्षात्कार में चरितार्थ होता है। इस संबंध में कबीर की विशेषता यह है कि वे सामान्य रूप से खुद को निर्गुणोपासक मानते हैं जबकि ब्रह्मोपसना सगुण भक्ति से होती है। कबीर ने ब्रह्मोपसना में प्रेम का योग पैदा किया। कबीर के प्रेम में सूफीवाद का स्पष्ट प्रभाव है। सूफीमत के इतिहास से स्पष्ट है कि वह भारतीय बौद्ध दर्शन एवं वेदान्त से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित थे। इसलिए ऐसी बहुत सी बातें अद्वैतवाद, माया, ज्ञान, मुक्ति का स्वरूप आदि जो सामान्य बातें हैं वे कबीर और सूफियों में

P.T.O

में मुखता से पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त भी कुछ चीजें ऐसी हैं जो निश्चय ही कबीर ने सूफियों से ग्रहण किया था। उसमें पहली चीज है परमात्मा के प्रति प्रेम की तीव्रता। भारतीय परंपरा में यह तीव्रता न थी।

प्रेम से ही सम्बद्ध है विरह। सूफियों में विरह का बड़ा स्थान है। सूफी चिंतकों ने उसे प्रेम से भी बड़ा कहा गया है। कबीर भी प्रेम में विरह को बहुत ऊँचा स्थान देते हैं। 'ग्यान विरह के अंग' में कबीर कहते हैं —

"विरहा बुरहा जिनि कहो बिरहा है सुलितान
जिस घट विरह न संचरें, सो घट जानि मसान।"

कबीर के काव्य में विरह की व्यापकता की प्रधानता रही है। उन्होंने अपने काव्य में निर्गुण ब्रह्म को ही अपना स्वामी माना है, स्वयं को उनकी पत्नी। अपने प्रेम को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने के लिए उन्होंने कैसी हृदय विदग्ध पंक्तियों का सहारा लिया है, इसे सहज ही देखा जा सकता है —

"कबीर देखत दिन गया, निस भी देखत जाई।
विरहणी पिव पावै नहीं, जियरा तलपे भाई॥"

प्रेम की पीड़ा का यह मार्मिक अनुभव वही कर सकता है जो सद्गुरु के प्रति सच्चा प्रेम रखता हो। प्रेम की यह विशेषता है कि यहाँ विरह की पीड़ा तो होती है, किंतु उसकी मारक अनुभूतियों को झेलना सहज नहीं होता। जिसने विरह की अनुभूतियों को जितना झेला है वही प्रेम की पीर को समझ सकता है —

"हिरदा भीतर दौ जले धुआँ न प्रकट होई।
जाकि लागी सो लखे कै जिहि लाई सोई।"

हृदय में प्रेम की अग्नि जल रही है किंतु उसके लक्षण बाहर प्रकट नहीं होते, इसका अनुभव तो वही करेगा जिसके भीतर आग जल रही हो। विरह की अवस्था ऐसी होती है कि प्रिय के दर्शन के लिए विरहणी उठती है, किंतु कृशकाय होने के कारण वह गिर पड़ती है। साथ ही उसे यह भी आशंका है कि कहीं इस तरह मेरी मृत्यु न हो जाए, फिर दर्शन किस काम का? यह प्रेम का साधक रूप है जो अपने प्रिय से मिले बिना मरना भी नहीं चाहती। उस विरहणी को हृदय के भीतर गीली लकड़ी के समान जलना अच्छा नहीं लगता, वह एकबार

भभक कर जल जाना पसन्द करती है। क्योंकि प्रेम की पीड़ा उसके बर्दाश्त से बाहर है। यहाँ कबीर विरह की अंतर्वेदना को बहुत मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है। प्रेमी से मिलने की उत्कंठा इतनी है कि एकबार वह भभक कर जल जाने को भी प्रस्तुत है। कम से कम विरह के ताप से छुटकारा तो मिलेगा। फिर आत्मा विरह रूपी परमात्मा से एकाकार हो जाएगी। प्रेम की यह अभिव्यंजना कबीर के प्रेम को प्रकट करने के लिए काफी है।

कबीर ने प्रेम और विरह के माध्यम से आत्मा और परमात्मा के मधुर भावों को दाम्पत्य संबंधों के द्वारा प्रतिष्ठित किया है। इन प्रसंगों में कबीर की अभिव्यक्ति कहीं सहज तो कहीं उग्र हो जाती है। प्रस्तुत साखी में कबीर ने आत्मा रूपी विरहणी की विरह भावना को बहुत मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है-

"बहुत दिनन की जोवती बाट तुम्हारे राम।
जिव तरसे तुम मिलन को माने नहीं विसराम॥"

विरह की आग में जलती विरहणी की मनोदशा का यहाँ सुंदर चित्रांकन हुआ है। विरहणी न जाने कब से बाट जोह रही है और अब भी वह प्रतीक्षारत है, प्रिय से एकात्म स्थापित करने के लिए दिल व्यग्र हो उठा है और मन में शांति नहीं है। संकल्प विकल्प की स्थिति में वह सोचती है कि इस शरीर को जलाकर भस्म कर डालूँ जिससे धुआँ आकाश की ओर जाए और धुएँ के प्रभाव से प्रियतम का ध्यान मेरी ओर हो। कभी उसकी इच्छा होती है, इस शरीर को जलाकर स्याही बना लूँ और अपनी हड्डियों को लेखनी बनाकर विरह की पाती लिखूँ। इस प्रकार कबीर ने अपने काव्य में प्रेम और विरह की पराकाष्ठा कर दी है। प्रिय के वियोग में रोते-रोते आँखें लाल हो गई हैं, परंतु प्रिय का दर्शन ना हो सका। विरह भावना की यह तीव्रता सर्वथा अपरिचित पहलू है जिसे कबीर ने सार्थक कर दिया है। निश्चय ही कबीर के काव्य में प्रेम और विरह की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है।

P.G. Semester II
CC - VI
'Kabir ke Kavya men Virah'